शोध मंथन Vol. XVII No.2 Apr.- June. 2026 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.889 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.051

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में कृषि क्षेत्र में नारियों का योगदान

प्राप्तिः 10.05.2026
स्वीकृतः 08.06.2026

51

डॉ रक्षा सिंह
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
एम.जे.पी. रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली
ईमेलः *rakshabcb@gmail.com*

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की अर्थव्यवस्था में कृषि की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है और यह मनुष्य के जीविकोपार्जन का प्रधान स्त्रोत माना जाता रहा है। कृषि का मनुष्य के जीवन में अहम् योगदान ही नहीं है, अपितु मनुष्य कृषि पर ही निर्भर भी है। कृषि कार्य का प्रारम्भ नवपाषाण काल से माना जाता है। सभी प्रमुख कालों यथा सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक काल, महाजनपद काल, मौर्य काल, गुप्तकाल में भी कृषि लोगों का प्रमुख उद्यम था। कृषि कार्य को समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम भी माना जाता है। भारतीय समाज में कृषि कार्य को सम्मानजनक मानते हुए, अन्न को ब्रह्मा कहा गया है। पराशर मुनि ने कृषि पराशर में कृषि कर्म को पवित्र एवं कृषि कार्य करने वाले को धन्य कहा है क्योंकि अन्न ही प्राण एवं बल दोनों है, जिसके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।[1]

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में भी कृषि धनोपार्जन तथा जीविकोपार्जन का प्रमुख आधार था। इस काल में सुव्यवस्थित तरीके से विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती की जाती थी। अभिधानरत्नमाला से विभिन्न प्रकार की फसलों यथा तीन प्रकार के शालि चावल, दो प्रकार की सरसों, कोदो, अरहर, मसूर, मटर, तिल आदि की खेती करने का उल्लेख मिलता है।[2] इस समय सुगन्धित धान एवं पतले छिलके वाली गन्ने की फसल उपजाये जाने का साक्ष्य आदिपुराण से प्राप्त होता है। काव्यमीमांसा में भी उल्लेख मिलता है कि इस समय बंगाल में पाण्ड्र प्रदेश में एक विशेष प्रकार के गन्ने की खेती की जाती थी, जो पूरे भारत में प्रसिद्ध थी।[3] इस काल में भारत आने वाले अरब लेखकों ने भी कहा है कि भारत की भूमि बहुत उपजाऊ है तथा यहाँ अत्यधिक मात्रा में फलों–फूलों एवं अनाजों की खेती होती है।[4]

इस काल की उत्तर भारतीय नारियाँ भी कृषि में विशेष रुचि लेती थीं और विभिन्न प्रकार के अनाजों के उत्पादन में अपना सहयोग देती थीं। वे इस काल में प्रयुक्त होने वाले कृषि कार्य से

सम्बन्धित विभिन्न उपकरणों के समुचित उपयोग एवं गाय, बैलों की देखभाल करने में सिद्धस्थ थीं। नारियाँ कुदाल, कुल्हाड़ी, हँसिया, भूसी निकालने वाली क्षेपकी, इत्यादि कृषि उपकरणों का प्रयोग करना भलीभाँति जानती थीं। कृषक अपने खेतों में सिंचाई करने के लिए प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों ही साधनों का उपयोग करते थे, परन्तु वर्षा के जल पर वह अत्यधिक निर्भर थे। कृत्रिम संसाधनों में कुआँ, तालाब, रहट, नहर, इत्यादि प्रमुख थे। इस युग की नारियाँ पूर्ण श्रम के साथ सिंचाई के दोनों ही प्रकार के साधनों का उपयोग कर खेतों, उपवनों, उद्यानों की सिंचाई स्वयं करती थीं तथा पुरुषों को सहयोग भी देती थीं।

आलोच्यकालीन समाज में कृषि कार्य करना सभी वर्गों के लिये मान्य था। सामन्त, भूस्वामी एवं अन्य अधिकारी और धन सम्पन्न लोग अपने खेतों में कृषि कार्य करवाने हेतु मजदूर हलोवाहे रखते थे। साधारण कृषक लोग जिनके पास कृषि भूमि एवं धन कम होता था, वे अपने परिवार की नारियों की सहायता लेकर कृषि कार्य करते थे। पुरुष अपने खेतों को स्वयं जोतकर तैयार कर लेते थे, परन्तु अन्य कार्यों में नारियाँ उनकी सहायता करती थीं। जुते हुये खेतों में बीज बोने के कार्य में नारियाँ पुरुषों की सहायता करती थीं तथा फसलों की रोपाई में उनका विशेष योगदान रहता था। वर्तमान समय में भी मक्का, धान, विभिन्न सब्जियों यथा टमाटर, मिर्च, भिण्डी इत्यादि की बुवाई नारियों द्वारा की जाती है। खेतों में बीज डालने की क्रिया को इस काल में वप्त कहा जाता था।[5] खेत में बीज को बोने के बाद फसल की लुनाई अनिवार्य रूप से की जाती थी, जो वर्तमान समय में भी की जाती है। कृषि पराशर में भी कहा गया है कि जब फसल बड़ी हो जाये, तब उसमें से फालतू घास–फूस को निकाल देना चाहिए ताकि घास–फूस फसल को कमजोर नहीं करे और फसल की पैदावार अच्छी हो।[6] नारियाँ फसलों की लुनाई का कार्य निपुणता पूर्वक करती थीं तथा वर्तमान समय में भी नारियाँ विविध प्रकार के फसलों की लुनाई का कार्य करने में सिद्धस्थ हैं।

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारतीय नारियाँ कृषि कार्य करने के लिए मौसम के अनुरूप अत्यन्त सावधानीपूर्वक फसलों के बीज तैयार करती थीं। फसलों के अत्यधिक उत्पादन के लिए उसके बीज का स्वस्थ होना अनिवार्य होता है, क्योंकि यदि बीज अच्छा होगा, तभी फसल भी अच्छी होगी, परन्तु यदि बीज ही खराब होगा तब उपजाऊ भूमि और उचित खाद का प्रयोग करके भी हम अच्छी फसल नहीं उपजा सकते हैं। इस काल की नारियाँ भी ऐसा मानती थीं और बीज तैयार करने में अपनी महती भूमिका निभाती थीं। वे स्वस्थ बीजों को एकत्रित करने में पुरुषों का सहयोग करती थीं तथा बीजों के शोधन एवं परिशोधन को बड़ी लगन एवं तत्परता से करती थीं। कृषि पराशर में वर्णित है कि रजस्वला नारी, बाँझ नारी, गर्भवती नारी कृषि के लिए तैयार किये गये बीजों की पोटली को न छुँयें, क्योंकि ऐसा करने से बीज खराब होने की सम्भावना रहती है।[7] इस काल के साहित्यों में भी खेतों में कृषि कार्य करने वाली नारियों का वर्णन मिलता है। यशस्तिलक में गोपिका का उल्लेख हुआ है, जो कृषि कार्य करने वाले गोप की पत्नी होती थी एवं कृषि कार्यों में उसका सहयोग करती थी। सोमदेव ने धान के खेतों में कार्य करने के लिए जाती हुई गोपिकाओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि यौधेय जनपद के किसानों की पत्नियाँ अपनी सुन्दर बलखाती नटखट चाल से तथा नेत्रों से क्षण–भर के लिए परदेशी व्यापारियों को देखती हुई अपने खेतों में काम करने चली जाती थीं।[8]

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.051

विवेच्यकालीन नारियाँ खेतों में तैयार फसलों की रखवाली करने का कार्य भी करती थीं। कृषक फसलों के पकने से पहले उसकी सुरक्षा का उपाय करते थे। वे खेत के चारों तरफ ऊँची–ऊँची बाड़ लगाकर विभिन्न प्रकार की आकृति वाले पुतले खड़े कर देते थे ताकि पशु–पक्षी डरकर भाग जायें, तत्पश्चात् स्त्री–पुरुष खेतों में बैठकर फसल की रखवाली किया करते थे। शिशुपालवध महाकाव्य में नारियों द्वारा धान की फसलों की खेतों की रखवाली करने का वर्णन किया गया है। इसमें वर्णित है कि अश्विनी के महीने में धान की फसल की रखवाली करने वाली नारियाँ हिरणों को अपने मधुर स्वरों से गीत गाकर मोहित कर रही हैं, ताकि वे हिरण उनकी मनोहर ध्वनि से मोहित होकर उनकी धान की फसल न खायें। इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर उल्लिखित हे कि धान की फसल की रखवाली करने वाली नारियाँ जब तक खेत के एक किनारे से तोतों को उड़ाने के लिए जाती थीं, तब तक दूसरे किनारे के मृगों के झुंड आकर फसल (चरने) खाने लगते थे, फलस्वरूप खेतों की रक्षा करने वाली नारियाँ थक कर परेशान हो जाती थीं।[9] कामरूप (असम) की कृषक गोपिकाओं द्वारा शालि धान की फसल के खेतों की सुरक्षा का कार्य करते हुये खेत में आने वाले तोतों को हाथ से ताली बजा–बजाकर उड़ाने का प्रमाण तिलकमंजरी से मिलता है।[10] हेमचन्द्र ने भी गुजरात में कृषकों की पत्नियों द्वारा धान की फसल की गीत गाते हुये रखवाली करने का उल्लेख किया है।[11] इस प्रकार नारियाँ भी पुरुषों के समान ही अपने खेतों की फसलों की रखवाली अत्यन्त ही परिश्रम, धैर्य एवं साहस से करने में प्रवीण थीं।

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारतीय नारियाँ फसलों की कटाई करने में भी निपुण थीं। फसलों के पक कर तैयार हो जाने के उपरान्त नारियाँ हँसिया का उपयोग कर इन फसलों को काटती थीं। यशस्तिलक से ज्ञात होता है कि पके हुये फसलों को काटने की क्रिया को लवन कहा जाता था।[12] नारियाँ फसलों को काटने के पश्चात् उसको खलिहान में संग्रह कर रखने तथा अन्न एवं भूसे को अलग करने के लिए मणनी करने में पुरुषों को अपना सहयोग देती थीं। कुट्टनीमतम् से ज्ञात होता है कि नारियाँ धान कूटने के लिए मुसल का प्रयोग करती थीं।[13] आदि पुराण में भी वर्णित है कि कृषक परिवार की नारियाँ अनाज कूटने व शोधने का कार्य करती थीं।[14] नारियों द्वारा अन्न को ओसाने एवं फटकने का कार्य स्वयं किया जाता था तथा पुरुषों को भी सहयोग दिया जाता था। प्रायः अनाज कम होने पर वे उसे सूप से फटक कर साफ करती थीं। अनाज को साफ करने के पश्चात् संग्रहित कर उसका भण्डारण करके रखना अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है। अनाज को भण्डार गृह में रखने से पूर्व उसे धूप में भली भाँति सुखाना पड़ता था, इन सभी महत्वपूर्ण कार्यों में नारियाँ अपनी महती भूमिका निभाती थीं तथा पुरुषों को सहायता प्रदान करती थीं।

इस काल की उत्तर भारतीय नारियों को वृक्षों, फूलों से अगाध प्रेम था। वे मालिन, उद्यानपालिका के रूप में इन वृक्षों, फूलों, उद्यानों आदि की देखभाल निपुणता पूर्वक किया करती थीं। कादम्बरी में मालिन का उल्लेख मिलता है, जो उद्यान में पौधों को लगाने एवं उनकी देखरेख का कार्य करती थीं।[15] कथासरित्सागर, भोजप्रबन्ध, इत्यादि ग्रन्थों में नारियों द्वारा मालिन के रूप में कार्य करने का साक्ष्य प्राप्त होता है, जो इस बात का सूचक है कि उन्हें वृक्षों, पौधों, फूलों के देखरेख करने वं सुरक्षा करने के सन्दर्भ में भी ज्ञान था।

इस युग की ऋषि कन्यायें भी अपने आश्रम के उपवनों को स्वयं सींचा करती थीं तथा उनकी रखवाली भी करती थीं। नारियाँ वृक्षों के महत्व एवं तालाब, बावड़ी आदि की उपयोगिता को समझती थीं। राजघराने तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवार की नारियाँ उपवन, जलाशयों आदि का निर्माण करवाती थीं। नारियों द्वारा निर्मित जलाशय साधारण जनता की प्यास बुझाने के अतिरिक्त कृषि कार्यों के लिए भी विशेष उपयोगी होते थे। कश्मीर के शासक ललितादित्य की पत्नी ईशान देवी ने कृत्रिम जलाशयों का निर्माण करवाया था।[16] कलचूरिरवशं की रानी अल्हण दवी द्वारा बगीचे को लगवाने का उल्लेख भेराघाट से प्राप्त होता है।[17]

विवेच्यकालीन उत्तर भारतीय नारियाँ पशुओं की देखभाल करने में भी निपुण थीं। इस युग में पशु कृषि व्यवस्था के प्रमुख आधार होने के साथ ही साथ दैनिक जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम थे, इसलिए नारियाँ पशुओं की समुचित देखभाल करने तथा उनके दूध से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों को बनाने में रुचि लेती थीं। नारियाँ पशुओं को खिलाने के लिए खेत से हरी–हरी घास का चारा काटकर लाती थीं और उसे पशुओं को खिलाती थीं। वे गोबर से खेतों को उपजाऊ बनाने के लिए खाद बनाने में भी सहयोग करती थीं। नारियाँ बड़ी ही आसानी से पशुओं का दूध निकाल लेती थीं और इस दूध से दही, मठ्ठा, घी, मक्खन, मिठाई, इत्यादि बनाती थीं। तिलक–मंजरी से ज्ञात होता है कि पशुपालन का कार्य करने वाले को गोप या गोपाल कहा जाता था तथा उसकी पत्नी गोपललना कहलाती थी।[18] प्रबन्ध चिन्तामणि में भी एक किसान की पत्नी को अपनी भैंस के बच्चे की देखभाल करते हयु आरै उसे छाछ पिलाते हयु वर्णित किया गया है।[19]

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारतीय नारी पुरुष समाज के समान ही कृषि के कार्यों में अपनी अनन्य भागीदारी निभाती थीं। वे पर्यावरण के प्रति सजग तथा फलों, फूलों एवं वृक्षों से प्रेम करने वाली थीं। नारी के कृषि में योगदान से ही इस काल में अन्न के भण्डार भरे हुये थे, जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव हो सका जिसने बाह्य आक्रमणकारियों का सामना बहुत ही बहादुरी और साहस के साथ किया। वर्तमान समय में भी नारियाँ कृषि में अपना अपूर्व सहयोग देती हैं। वे बीजों के चयन से लेकर फसल के तैयार होने पर उसकी कटाई तक और उसके बाद फसल को संरक्षित कर रखने तथा अन्न के रूप में अपने परिवार, समाज एवं प्राणियों का पेट भरने तक में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं।

सन्दर्भ

1. पराशर मुनि, कृषिपराशरः अनुवादक और सम्पादक द्वारका प्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2017, श्लोक– 3,4,6 एवं 8, पृ0सृ0–**1** एवं **2**।
2. राधवेन्द्र प्रताप सिंह, पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत का सामाजिक इतिहास, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ0सं0–**164**।
3. राजशेखर, काव्यमीमांसा, हिन्दी व्याख्याकार गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013, अध्याय–12, पृ0सं0–**138**।
4. एच–एम– इलियट एंड जॉन डॉसन, द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i02.051

हिस्टोरियन्स, द मोहम्डन पिरियड्स, वॉल्यूम–1, ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लंदन, 1867, पृ0सं0–**15,16** एवं **24**।

5. गोकुलचन्द्र जैन, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर, 1967, पृ0सं0–**190**।
6. पराशर मुनि, कृषि पराशर, पूर्वोद्धत, श्लोक–189, पृ0सं0–**40**।
7. पराशर मुनि, कृषि पराशर, पूर्वोद्धत, श्लोक–157 एवं 162, पृ0सं0–**33** एवं **34**।
8. गोकुलचन्द्र जैन, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पूर्वोद्धत, पृ0सं0–**62** एवं **194**।
9. रामप्रताप त्रिपाठी, शिशुपालवध महाकाव्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2009, सर्ग–6, श्लोक–49, पृ0सं0–163, सर्ग–12, श्लोक–42 एवं 43, पृ0सं0–**324** एवं **325**।
10. पुष्पा गुप्ता, धनपालकृत तिलक मंजरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन), पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1988, पृ0सं0–**200** एवं **222**।
11. बी0पी0 मजूमदार, सोशियो–इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नादर्न इण्डिया (1030–1194 ए0डी0), के0एल0 मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1960, पृ0सं0–**179**।
12. गोकुलचन्द्र जैन, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पूर्वोद्धत, पृ0सं0–**190**।
13. दामोदर गुप्त, कुट्टनीमतंकाव्यम्, अनुवादक जगन्नाथ पाठक, सम्पादक नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद 2017, श्लोक–870, पृ0सं0–**181**।
14. आचार्य जिनसेन, महापुराण (आदि पुराण), अनुवादक एवं सम्पादक पंडित पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, भाग–1, 1951, पर्व–8, श्लोक–123, पृ0सं0–**177**।
15. बाणभट्ट, कादम्बरी, व्याख्याकार पाण्डेय रामतेज शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012, पूर्व भाग, पृ0सं0–**384**।
16. कल्हण, राजतरंगिणी, भाष्यकार रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, भाग–2, तरंग–4, श्लोक–212, पृ0सं0–**124**।
17. जैस बर्गेस, एपिग्राफिया इण्डिका, वॉल्यूम–2, द सुपरिन्टेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिन्टिंग, कलकत्ता, 1894। ''भेराघाट स्टोन इंस्क्रिप्शन ऑफ अल्हण देवी, वर्ष 907'', पद्य–27 एवं 28, पृ0सं0–**8, 13** एवं **16**।
18. पुष्पा गुप्ता, धनपालकृत तिलक मंजरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन), पूर्वोद्धत, पृ0सं0–**209**।
19. मेरूतुङ्गाचार्य, प्रबन्धचिन्तामणि, हिन्दी भाषान्तर अनुवाद पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, पूर्वोद्धत, प्रकाश–1, प्रकरण–37, पृ0सं0–**30**।